श्रीमद् भागवत का यह सार
भगवद् भक्ति ही आधार

श्रीमद्भागवत रसिक कुटुंब

रुद्र गीत

शिव शंकर की निर्मल प्रीत
है कृष्ण आराधन रुद्र गीत

नारायणं(न्) नमस्कृत्य, नरं(ञ्) चैव नरोत्तमम्।
देवीं(म्) सरस्वतीं(वँ) व्यासं(न्), ततो जयमुदीरयेत्॥

नामसङ्कीर्तनं(यँ) यस्य, सर्वपापप्रणाशनम्।
प्रणामो दुःखशमनस्, तं(न्) नमामि हरिं(म्) परम्॥

श्रीमद्भागवतमहापुराणम्
चतुर्थः(स्) स्कंधः
अथ चतुर्विं(म्)शोऽध्यायः

मैत्रेय उवाच

विजिताश्वोऽधिराजाऽऽसीत्-पृथुपुत्रः(फ्) पृथुश्रवाः।
यवीयोभ्योऽददात्काष्ठा, भ्रातृभ्यो भ्रातृवत्सलः॥ 1॥

विजिताश्वोऽ + धिराजाऽऽ + सीत् , यवी + योभ्योऽ + ददात् + काष्ठा

श्रीमैत्रेयजी कहते हैं—विदुरजी ! महाराज पृथु के बाद उनके पुत्र परम यशस्वी विजिताश्व राजा हुए। उनका अपने छोटे भाइयों पर बड़ा स्नेह था, इसलिये उन्होंने चारों को एक-एक दिशा का अधिकार सौंप दिया।

हर्यक्षायादिशत्प्राचीं(न्), धूम्रकेशाय दक्षिणाम्।
प्रतीचीं(वँ) वृकसं(ञ्)ज्ञाय, तुर्यां(न्) द्रविणसे विभुः॥ 2॥

हर्य + क्षाया + दिशत् + प्राचीं(न्), वृक + सं(ञ्)ज्ञाय

राजा विजिताश्व ने हर्यक्ष को पूर्व,धूम्रकेश को दक्षिण,वृक को पश्चिम और द्रविण को उत्तर दिशा का राज्य दिया।

अन्तर्धानगतिं(म्) शक्रात्-लब्ध्वान्तर्धानसं(ञ्)ज्ञितः।
अपत्यत्रयमाधत्त, शिखण्डिन्यां(म्) सुसम्मतम् ॥ 3॥

अन्तर् + धानगतिं(म्), लब्ध्वान्तर् + धान + सं(ञ्)ज्ञितः

अपत् + यत्र + यमा + धत्त, शिखण् + डिन्यां(म्), सुसम् + मतम्

उन्होंने इन्द्र से अन्तर्धान होने की शक्ति प्राप्त की थी, इसलिये उन्हें 'अन्तर्धान' भी कहते थे। उनकी पत्नी का नाम शिखण्डिनी था। उससे उनके तीन सुपुत्र हुए।

पावकः(फ्) पवमानश्च, शुचिरित्यग्नयः(फ्) पुरा।
वसिष्ठशापादुत्पन्नाः(फ्), पुनर्योगगतिं(ङ्) गताः॥ 4॥

शुचि + रित्यग् + नयः(फ्), वसिष्ठ + शापा + दुत्पन्नाः(फ्), पुनर् + योग + गतिं(ङ्)

उनके नाम पावक, पवमान और शुचि थे। पूर्वकाल में वसिष्ठजी का शाप होने से उपर्युक्त नाम के अग्नियों ने ही उनके रूप में जन्म लिया था।आगे चलकर योगमार्ग से ये फिर अग्निरूप हो।

अन्तर्धानो नभस्वत्यां(म्), हविर्धानमविन्दत।
य इन्द्रमश्वहर्तारं(वँ), विद्वानपि न जघ्निवान्॥ 5॥

नभस् + वत्यां(म्), हविर् + धानम + विन्दत, इन्द्र + मश्व + हर्तारं(वँ)

अन्तर्धान के नभस्वती नाम की पत्नी से एक और पुत्र-रत्न हविर्धान प्राप्त हुआ।महाराज अन्तर्धान बड़े उदार पुरुष थे। जिस समय इन्द्र उनके पिता के अश्वमेध-यज्ञ का घोड़ा हरकर ले गये थे, उन्होंने पता लग जाने पर भी उनका वध नहीं किया था।

राज्ञां(वँ) वृत्तिं(ङ्) करादान- दण्डशुल्कादिदारुणाम्।
मन्यमानो दीर्घसत्र- व्याजेन विससर्ज ह॥ 6॥

दण्ड + शुल्कादि + दारुणाम्

राजा अन्तर्धान ने कर लेना, दण्ड देना, जुरमाना वसूल करना आदि कर्तव्यों को बहुत कठोर एवं दूसरों के लिये कष्ट दायक समझ कर एक दीर्घ कालीन यज्ञ में दीक्षित होने के बहाने अपना राज-काज छोड़ दिया।

तत्रापि हं(म्)सं(म्) पुरुषं(म्), परमात्मानमात्मदृक्।
यजं(म्)स्तल्लोकतामाप, कुशलेन समाधिना॥ 7॥

परमात्मा + नमात् + मदृक्, यजं(म्) + स्तल् + लोकता + माप

यज्ञकार्य में लगे रहने पर भी उन आत्मज्ञानी राजा ने भक्त भयभञ्जन पूर्णतम परमात्मा की आराधना करके सुदृढ़ समाधि के द्वारा भगवान् के दिव्य लोक को प्राप्त किया।

हविर्धानाद्धविर्धानी, विदुरासूत षट् सुतान्।
बर्हिषदं(ङ्) गयं(म्) शुक्लं(ङ्),कृष्णं(म्) सत्यं(ञ्) जितव्रतम्॥ 8॥

हविर् + धानाद् + धविर्धानी

विदुरजी ! हविर्धान की पत्नी हविर्धानी ने बर्हिषद्, गय, शुक्ल, कृष्ण, सत्य और जितव्रत नाम के छ: पुत्र पैदा किये।

बर्हिषत् सुमहाभागो, हाविर्धानि:(फ्) प्रजापति:।
क्रियाकाण्डेषु निष्णातो, योगेषु च कुरूद्वह॥ 9॥

सुमहा + भागो, कुरूद् + वह

कुरुश्रेष्ठ विदुरजी ! इनमें हविर्धान के पुत्र महाभाग बर्हिषद् यज्ञादि कर्म काण्ड और योगाभ्यास में कुशल थे। उन्होंने प्रजापति का पद प्राप्त किया।

यस्येदं(न्) देवयजन-मनु यज्ञं(वँ) वितन्वत:।
प्राचीनाग्रै:(ख्) कुशैरासी-दास्तृतं(वँ) वसुधातलम् ॥ 10॥

उन्होंने एक स्थान के बाद दूसरे स्थान में लगातार इतने यज्ञ किये कि यह सारी भूमि पूर्व की ओर अग्रभाग करके फैलाये हुए कुशों से पट गयी थी।

सामुद्रीं(न्) देवदेवोक्ता-मुपयेमे शतद्रुतिम्।
यां(वँ) वीक्ष्य चारुसर्वाङ्गीं(ङ्), किशोरीं(म्) सुष्ठ्वलङ्कृताम्।
परिक्रमन्तीमुद्वाहे, चकमेऽग्नि:(श्) शुकीमिव॥ 11॥

देव + देवोक्ता, चारु + सर्वाङ्गीं(ङ्),सुष्ठ् + वलङ् + कृताम्, परि + क्रमन्ती + मुद्वाहे

राजा प्राचीनबर्हि ने ब्रह्माजी के कहने से समुद्र की कन्या शतद्रुति से विवाह किया था। सर्वाङ्ग सुन्दरी किशोरी शतद्रुति सुन्दर वस्त्राभूषणों से सजधज कर विवाह-मण्डप में जब भाँवर देने के लिये घूमने लगी, तब स्वयं अग्निदेव भी मोहित होकर उसे वैसे ही चाहने लगे जैसे शुकी को चाहा था।

विबुधासुरगन्धर्व-मुनिसिद्धनरोरगा:।
विजिता:(स्) सूर्यया दिक्षु, क्वणयन्त्यैव नूपुरै:॥ 12॥

विबुधा + सुर + गन्धर्व, मुनि + सिद्ध + नरोरगा:, क्वण + यन्त्यैव

नव विवाहिता शतद्रुति ने अपने नूपुरों की झनकार से ही दिशा-विदिशाओं के देवता, असुर, गन्धर्व, मुनि, सिद्ध, मनुष्य और नाग—सभी को वश में कर लिया था।

प्राचीनबर्हिष:(फ्) पुत्रा:(श्), शतद्रुत्यां(न्) दशाभवन्।
तुल्यनामव्रता:(स्) सर्वे, धर्मस्नाता:(फ्) प्रचेतस:॥ 13॥

प्राचीन + बर्हिष:(फ्), तुल्य + नाम + व्रता:(स्)

शतद्रुति के गर्भ से प्राचीनबर्हि के प्रचेता नाम के दस पुत्र हुए। वे सब बड़े ही धर्मज्ञ तथा एक-से नाम और आचरण वाले थे।

पित्राऽऽदिष्टा:(फ्) प्रजासर्गे, तपसेऽर्णवमाविशन् ।
दशवर्षसहस्राणि, तपसाऽऽर्चं(म्)स्तपस्पतिम्॥ 14॥

तपसेऽर्ण+ वमा+ विशन्, दश+ वर्ष+ सहस्राणि, तपसाऽऽर् + चं(म्)स् + तपस्पतिम्

जब पिता ने उन्हें सन्तान उत्पन्न करने का आदेश दिया, तब उन सबने तपस्या करने के लिये समुद्र में प्रवेश किया। वहाँ दस हजार वर्ष तक तपस्या करते हुए उन्होंने तप का फल देने वाले श्रीहरि की आराधना की।

यदुक्तं(म्) पथि दृष्टेन, गिरिशेन प्रसीदता।
तद्ध्यायन्तो जपन्तश्च, पूजयन्तश्च सं(यँ)यता:॥ 15॥

तद्ध्या + यन्तो

घर से तपस्या करने के लिये जाते समय मार्ग में श्रीमहादेवजी ने उन्हें दर्शन देकर कृपापूर्वक जिस तत्त्व का उपदेश दिया था, उसी का वे एकाग्रता पूर्वक ध्यान, जप और पूजन करते रहे।

विदुर उवाच

प्रचेतसां(ङ्) गिरित्रेण, यथाऽऽसीत्पथि सङ्गमः।

यदुताह हरः(फ्) प्रीतस्- तन्नो ब्रह्मन् वदार्थवत् ॥ 16॥

यथा+ सीत् + पथि

विदुरजी ने पूछा—ब्रह्मन् ! मार्ग में प्रचेताओं का श्रीमहादेवजी के साथ किस प्रकार समागम हुआ और उन पर प्रसन्न होकर भगवान् शङ्कर ने उन्हें क्या उपदेश किया, वह सारयुक्त बात आप कृपा करके मुझसे कहिये।

सङ्गमः(ख्) खलु विप्रर्षे, शिवेनेह शरीरिणाम्।

दुर्लभो मुनयो दध्यु- रसङ्गाद्यमभीप्सितम्॥ 17॥

रसङ्गा + द्यम + भीप्सितम्

ब्रह्मर्षे ! शिवजी के साथ समागम होना तो देहधारियों के लिये बहुत कठिन है। औरों की तो बात ही क्या है—मुनिजन भी सब प्रकार की आसक्ति छोडक़र उन्हें पाने के लिये उनका निरन्तर ध्यान ही किया करते हैं, किन्तु सहज में पाते नहीं।

आत्मारामोऽपि यस्त्वस्य, लोककल्पस्य राधसे।

शक्त्या युक्तो विचरति, घोरया भगवान् भवः॥ 18॥

आत्मा + रामोऽपि, यस् + त्वस्य

यद्यपि भगवान् शङ्कर आत्माराम हैं, उन्हें अपने लिये न कुछ करना है, न पाना, तो भी इस लोक सृष्टि की रक्षा के लिये वे अपनी घोर रूपा शक्ति (शिवा) के साथ सर्वत्र विचरते रहते हैं।

मैत्रेय उवाच

प्रचेतसः(फ्) पितुर्वाक्यं(म्), शिरसाऽऽदाय साधवः।

दिशं(म्) प्रतीचीं(म्) प्रययुस्- तपस्यादृतचेतसः॥ 19॥

पितुर् + वाक्यं(म्), तपस्या + दृत + चेतसः

श्रीमैत्रेयजी ने कहा—विदुरजी ! साधुस्वभाव प्रचेतागण पिता की आज्ञा शिरोधार्य कर तपस्या में चित्त लगा पश्चिम की ओर चल दिये।

समुद्रमुप विस्तीर्ण- मपश्यन् सुमहत्सरः।

महन्मन इव स्वच्छं(म्), प्रसन्नसलिलाशयम्॥ 20॥

प्रसन्न + सलिला + शयम्

चलते-चलते उन्होंने समुद्र के समान विशाल एक सरोवर देखा। वह महापुरुषों के चित्त के समान बड़ा ही स्वच्छ था तथा उसमें रहने वाले मत्स्यादि जल जीव भी प्रसन्न जान पड़ते थे।

नीलरक्तोत्पलाम्भोज-कह्लारेन्दीवराकरम्।

हं(म्)ससारसचक्राह्व-कारण्डवनिकूजितम्॥ 21॥

नील + रक्तोत् + पलाम्भोज, कह्ला + रेन्दी + वराकरम् , हं(म्)ससार + सचक्राह्व

उसमें नील कमल, लाल कमल, रात में, दिन में और सायंकाल में खिलने वाले कमल तथा इन्दीवर आदि अन्य कई प्रकार के कमल सुशोभित थे। उसके तटों पर हंस, सारस, चकवा और कारण्डव आदि जल पक्षी चहक रहे थे।

मत्तभ्रमरसौस्वर्य- हृष्टरोमलताङ्घ्रिपम्।

पद्मकोशरजो दिक्षु, विक्षिपत्पवनोत्सवम्॥ 22॥

मत्त + भ्रमर + सौस्वर्य, हृष्ट + रोम + लताङ्घ्रिपम्, विक्षिपत् + पवनोत् + सवम्

उसके चारों ओर तरह-तरह के वृक्ष और लताएँ थीं, उन पर मत वाले भौंरे गूँज रहे थे। उनकी मधुर ध्वनि से हर्षित होकर मानो उन्हें रोमाञ्च हो रहा था। कमल कोश के परागपुञ्ज वायु के झकोंरों से चारों ओर उड़ रहे थे मानो वहाँ कोई उत्सव हो रहा है।

तत्र गान्धर्वमाकर्ण्य, दिव्यमार्गमनोहरम्।

विसिस्म्यू राजपुत्रास्ते, मृदं(ङ्)गपणवाद्यनु॥ 23॥

गान्धर्व + माकर्ण्य , दिव्य + मार्ग + मनोहरम् , मृदं(ङ्) + गपण + वाद्यनु

वहाँ मृदङ्ग, पणव आदि बाजों के साथ अनेकों दिव्य राग- रागिनियों के क्रम से गायन की मधुर ध्वनि सुन कर उन राजकुमारों को बड़ा आश्चर्य हुआ।

तर्ह्येव सरसस्तस्मान्-निष्क्रामन्तं(म्) सहानुगम्।

उपगीयमानममर-प्रवरं(वँ) विबुधानुगै:॥ 24॥

सरसस्+ तस्मान्, उपगीय+ मान+ ममर

तप्तहेमनिकायाभं(म्), शितिकण्ठं(न्) त्रिलोचनम्।

प्रसादसुमुखं(वँ) वीक्ष्य, प्रणेमुर्जातकौतुका:॥ 25॥

तप्त+ हेम+ निकायाभं(म्), प्रणेमुर् + जात+ कौतुका:

इतने में ही उन्होंने देखा कि देवाधि देव भगवान् शङ्कर अपने अनुचरों के सहित उस सरोवर से बाहर आ रहे हैं। उनका शरीर तपी हुई सुवर्णराशि के समान कान्तिमान् है, कण्ठ नीलवर्ण है तथा तीन विशाल नेत्र हैं। वे अपने भक्तों पर अनुग्रह करने के लिये उद्यत हैं। अनेकों गन्धर्व उनका सुयश गा रहे हैं। उनका सहसा दर्शन पाकर प्रचेताओं को बड़ा कुतूहल हुआ और उन्होंने शङ्करजी के चरणों में प्रणाम किया।

स तान् प्रपन्नार्तिहरो, भगवान्धर्मवत्सलः।

धर्मज्ञान् शीलसम्पन्नान्, प्रीतः(फ्) प्रीतानुवाच ह॥ 26॥

प्रपन् + नार्ति + हरो, शील + सम्पन् + नान्

तब शरणागत भयहारी धर्मवत्सल भगवान् शङ्कर ने अपने दर्शन से प्रसन्न हुए उन धर्मज्ञ और शीलसम्पन्न राजकुमारों से प्रसन्न होकर कहा।

श्रीरुद्र उवाच

यूयं(वँ) वेदिषदः(फ्) पुत्रा, विदितं(वँ) वश्चिकीर्षितम्।

अनुग्रहाय भद्रं(वँ) व, एवं(म्) मे दर्शनं(ङ्) कृतम्॥ 27॥

वश्चि + कीर्षितम्

श्रीमहादेवजी बोले—तुम लोग राजा प्राचीन बर्हि के पुत्र हो, तुम्हारा कल्याण हो। तुम जो कुछ करना चाहते हो, वह भी मुझे मालूम है। इस समय तुम लोगों पर कृपा करने के लिये ही मैंने तुम्हें इस प्रकार दर्शन दिया है।

यः(फ्) परं(म्) रं(म्)हसः(स्) साक्षात्-त्रिगुणाज्जीवसं(ञ्)ज्ञितात्।

भगवन्तं(वँ) वासुदेवं(म्), प्रपन्नः(स्) स प्रियो हि मे॥ 28॥

त्रिगुणाज् + जीव + संज्ञितात्

जो व्यक्ति अव्यक्त प्रकृति तथा जीवसंज्ञक पुरुष—इन दोनों के नियामक भगवान् वासुदेव की साक्षात् शरण लेता है, वह मुझे परम प्रिय है।

स्वधर्मनिष्ठः(श्) शतजन्मभिः(फ्) पुमान्,

विरिञ्चतामेति ततः(फ्) परं(म्) हि माम्।

अव्याकृतं(म्) भागवतोऽथ वैष्णवं(म्),

पदं(यँ) यथाहं(वँ) विबुधाः(ख्) कलात्यये॥ 29॥

विरिञ् + चता + मेति

अपने वर्णाश्रमधर्म का भली भाँति पालन करने वाला पुरुष सौ जन्म के बाद ब्रह्मा के पद को प्राप्त होता है। और इससे भी अधिक पुण्य होने पर वह मुझे प्राप्त होता है। परन्तु जो भगवान् का अनन्य भक्त है, वह तो मृत्यु के बाद ही सीधे भगवान् विष्णु के उस सर्वप्रपञ्चातीत परमपद को प्राप्त हो जाता है, जिसे रुद्र रूप में स्थित मैं तथा अन्य आधिकारिक देवता अपने-अपने अधिकार की समाप्ति के बाद प्राप्त करेंगे।

अथ भागवता यूयं(म्), प्रियाः(स्) स्थ भगवान् यथा।

न मद्भागवतानां(ञ्) च, प्रेयानन्योऽस्ति कर्हिचित्॥ 30॥

मद् + भागवता + नां(ञ्),प्रेया + नन्योऽस्ति

तुम लोग भगवद्भक्त होनेके नाते मुझे भगवान् के समान ही प्यारे हो। इसी प्रकार भगवान् के भक्तों को भी मुझ से बढक़र और कोई कभी प्रिय नहीं होता।

इदं(वँ) विविक्तं(ञ्) जप्तव्यं(म्), पवित्रं(म्) मं(ङ्)गलं(म्) परम्।

निः(श्)श्रेयसकरं(ञ्) चापि, श्रूयतां(न्) तद्वदामि वः॥ 31॥

तद् + वदामि

अब मैं तुम्हें एक बड़ा ही पवित्र, मङ्गलमय और कल्याण कारी स्तोत्र सुनाता हूँ। इसका तुम लोग शुद्धभाव से जप करना।

मैत्रेय उवाच

इत्यनुक्रोशहृदयो, भगवानाह तान् शिवः।

बद्धाञ्जलीन् राजपुत्रान्-नारायणपरो वचः॥ 32॥

इत्यनु + क्रोश + हृदयो

श्रीमैत्रेयजी कहते हैं—तब नारायण परायण करुणार्द्रहृदय भगवान् शिव ने अपने सामने हाथ जोड़े खड़े हुए उन राजपुत्रों को यह स्तोत्र सुनाया।

श्रीरुद्र उवाच

जितं(न्) त आत्मविद्धुर्य-स्वस्तये स्वस्तिरस्तु मे।

भवता राधसा राद्धं(म्), सर्वस्मा आत्मने नमः॥ 33॥

आत्म + विद्धुर्य

भगवान् रुद्र स्तुति करने लगे—भगवन्! आपका उत्कर्ष उच्चकोटि के आत्मज्ञानियों के कल्याण के लिये—निजानन्द लाभ के लिये है, उससे मेरा भी कल्याण हो। आप सर्वदा अपने निरतिशय परमानन्द स्वरूप में ही स्थित रहते हैं, ऐसे सर्वात्मक आत्म स्वरूप आपको नमस्कार है।

नमः(फ्) पङ्कजनाभाय, भूतसूक्ष्मेन्द्रियात्मने।

वासुदेवाय शान्ताय, कूटस्थायं स्वरोचिषे॥ 34॥

भूत + सूक्ष्मेन्द्रि + यात्मने

आप पद्मनाभ हैं; भूतसूक्ष्म और इन्द्रियों के नियन्ता, शान्त, एकरस और स्वयंप्रकाश वासुदेव भी आप ही हैं; आपको नमस्कार है।

सङ्कर्षणाय सूक्ष्माय, दुरन्तायान्तकाय च।

नमो विश्वप्रबोधायं, प्रद्युम्नायान्तरात्मने॥ 35॥

प्रद्युम्ना + यान्त + रात्मने

आप ही सूक्ष्म, अनन्त और मुखाग्नि के द्वारा सम्पूर्ण लोकों का संहार करने वाले अहंकार के अधिष्ठाता सङ्कर्षण तथा जगत के प्रकृष्ट ज्ञान के उद्गमस्थान बुद्धि के अधिष्ठाता प्रद्युम्न हैं; आपको नमस्कार है।

नमो नमोऽनिरुद्धाय, हृषीकेशेन्द्रियात्मने।

नमः(फ्) परमहं(म्)साय, पूर्णाय निभृतात्मने॥ 36॥

हृषी + केशेन्द्रि + यात्मने

आप ही इन्द्रियों के स्वामी मनस्तत्त्व के अधिष्ठाता भगवान् अनिरुद्ध हैं; आपको बार-बार नमस्कार है। आप अपने तेज से जगत को व्याप्त करने वाले सूर्यदेव हैं, पूर्ण होने के कारण आप में वृद्धि और क्षय नहीं होता; आपको नमस्कार है।

स्वर्गापवर्गद्वाराय, नित्यं(म्) शुचिषदे नमः।

नमो हिरण्यवीर्याय, चातुर्होत्राय तन्तवे॥ 37॥

स्वर्गा + पवर्ग + द्वाराय

आप स्वर्ग और मोक्ष के द्वार तथा निरन्तर पवित्र हृदय में रहने वाले हैं, आपको नमस्कार है। आप ही सुवर्ण रूप वीर्य से युक्त और चातुर्होत्र कर्म के साधन तथा विस्तार करने वाले अग्नि देव हैं; आपको नमस्कार है।

नम ऊर्ज इषे त्रय्याः(फ्), पतये यज्ञरेतसे।

तृप्तिदाय च जीवानां(न्), नमः(स्) सर्वरसात्मने॥ 38॥

सर्व + रसात्मने

आप पितर और देवताओं के पोषक सोम हैं तथा तीनों वेदों के अधिष्ठाता हैं;हम आपको नमस्कार करते हैं,आप ही समस्त प्राणियों को तृप्त करनेवाले सर्वरस रूप हैं; आपको नमस्कार है।

सर्वसत्त्वात्मदेहाय, विशेषायं स्थवीयसे।

नमस्त्रैलोक्यपालाय, सहओजोबलाय च॥ 39॥

सर्व + सत्त्वात्म + देहाय

नमस् + त्रैलोक्य + पालाय

आप समस्त प्राणियों के देह, पृथ्वी और विराट्स्वरूप हैं तथा त्रिलोकी की रक्षा करने वाले मानसिक, ऐन्द्रियिक और शारीरिक शक्ति स्वरूप वायु हैं; आपको नमस्कार है।

अर्थलिं(ङ्)गाय नभसे, नमोऽन्तर्बहिरात्मने।

नमः(फ्) पुंण्याय लोकाय, अमुंष्मै भूरिवर्चसे॥ 40॥

नमोऽन् + तर् + बहिरात्मने

आप ही अपने गुण शब्द के द्वारा—समस्त पदार्थों का ज्ञान कराने वाले तथा बाहर-भीतर का भेद करने वाले आकाश हैं तथा आप ही महान् पुण्यों से प्राप्त होने वाले परम तेजोमय स्वर्ग-वैकुण्ठादि लोक हैं; आपको पुनः- पुनः नमस्कार है।

प्रवृत्ताय निवृत्ताय, पितृदेवाय कर्मणे।

नमोऽधर्मविपाकाय, मृंत्यवे दुःखदाय च॥ 41॥

नमोऽ + धर्म + विपाकाय

आप पितृ लोक की प्राप्ति कराने वाले प्रवृत्ति-कर्मरूप और देवलोक की प्राप्ति के साधन निवृत्ति कर्मरूप हैं तथा आप ही अधर्म के फलरूप दुःख दायक मृत्यु हैं; आपको नमस्कार है।

नमंस्त आशिषामीश, मनवे कारणात्मने।

नमो धर्माय बृहते, कृंष्णायाकुंण्ठमेधसे।

पुरुषाय पुराणाय, सां(ङ्)ख्ययोगेश्वराय च॥ 42॥

कृष्णाया + कुण्ठ + मेधसे

नाथ ! आप ही पुराण पुरुष तथा सांख्य और योग के अधीश्वर भगवान् श्रीकृष्ण हैं; आप सब प्रकार की कामनाओं की पूर्ति के कारण, साक्षात् मन्त्र मूर्ति और महान् धर्म स्वरूप हैं; आपकी ज्ञान शक्ति किसी भी प्रकार कुण्ठित होने वाली नहीं है; आपको नमस्कार है, नमस्कार है।

शक्तित्रयसमेताय, मीढुषेऽहं(ङ्)कृतात्मने।

चेतआकूतिरूपाय, नमो वाचोविभूतये॥ 43॥

मीढुषेऽ + हं(ङ्) + कृतात्मने

आप ही कर्ता, करण और कर्म—तीनों शक्तियों के एकमात्र आश्रय हैं; आप ही अहंकारके अधिष्ठाता रुद्र हैं; आप ही ज्ञान और क्रिया स्वरूप हैं तथा आपसे ही परा, पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी—चार प्रकार की वाणी की अभिव्यक्ति होती है; आपको नमस्कार है।

दर्शनं(न्) नो दिदृक्षूणां(न्), देहि भागवतार्चितम्।

रूपं(म्) प्रियतमं(म्) स्वानां(म्), सर्वेन्द्रियगुणाञ्जनम्॥ 44॥

सर्वेन्द्रिय + गुणाञ् + ञनम्

प्रभो ! हमें आपके दर्शनों की अभिलाषा है; अत: आपके भक्तजन जिसका पूजन करते हैं और जो आपके निजजनों को अत्यन्त प्रिय है, अपने उस अनूप रूप की आप हमें झाँकी कराइये। आपका वह रूप अपने गुणों से समस्त इन्द्रियों को तृप्त करने वाला है।

स्निग्धप्रावृड्घनश्यामं(म्), सर्वसौन्दर्यसं(ङ्)ग्रहम्।

चार्वायतचतुर्बाहुं(म्), सुजातरुचिराननम्॥ 45॥

स्निग्ध + प्रावृड् + घनश्यामं(म्), सर्व + सौन्दर्य + सं(ङ्)ग्रहम्

चार्वा + यत + चतुर्बाहुं(म्), सुजा + तरुचिरा + ननम्

पद्मकोशपलाशाक्षं(म्), सुन्दरभ्रु सुनासिकम्।

सुद्विजं(म्) सुकपोलास्यं(म्), समकर्णविभूषणम्॥ 46॥

पद्म + कोश + पला + शाक्षं(म्), सम + कर्ण + विभूषणम्

वह वर्षा कालीन मेघ के समान स्निग्ध श्याम और सम्पूर्ण सौन्दर्यों का सार-सर्वस्व है। सुन्दर चार विशाल भुजाएँ, महामनोहर मुखारविन्द, कमलदल के समान नेत्र, सुन्दर भौंहें, सुघड़ नासिका, मनमोहिनी दन्तपंक्ति,अमोल-कपोलयुक्त मनोहर मुखमण्डल और शोभाशाली समान कर्ण-युगल हैं।

प्रीतिप्रहसितापां(ङ्)ग-मलकैरुपशोभितम्।

लसत्पङ्कजकिं(ञ्)जल्क-दुकूलं(म्) मृष्टकुण्डलम्॥ 47॥

प्रीति + प्रहसिता + पाङ्गम्, अलकै + रुप + शोभितम्, लसत् + पङ्कज + किञ्जल्क

स्फुरत्किरीटवलय-हारनूपुरमेखलम्।

शङ्खचक्रगदापद्म-मालामण्युत्तमर्द्धिमत्॥ 48॥

स्फुरत् + किरीट + वलय, हार + नूपुर + मेखलम्

शङ्ख + चक्र + गदा + पद्म,माला + मण्युत्त + मर्द्धिमत्

प्रीतिपूर्ण उन्मुक्त हास्य, तिरछी चितवन, काली-काली घुँघराली अलकें, कमल कुसुम की केसर के समान फहराता हुआ पीताम्बर, झिल मिलाते हुए कुण्डल, चमचमाते हुए मुकुट, कङ्कण, हार, नूपुर और मेखला आदि विचित्र आभूषण तथा शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म, वनमाला और कौस्तुभमणि के कारण उसकी अपूर्व शोभा है।

सिं(म्)हस्कन्धत्विषो बिभ्रत्-सौभगग्रीवकौस्तुभम्।

श्रियानपायिन्या क्षिप्त-निकषाश्मोरसोल्लसत्॥ 49॥

सिं(वँ)ह + स्कन्धत् + विषो, सौभग + ग्रीव + कौस्तुभम्, निकषाश् + मोर + सोल्लसत्

उसके सिंह के समान स्थूल कंधे हैं—जिन पर हार, केयूर एवं कुण्डलादि की कान्ति झिलमिलाती रहती है—तथा कौस्तु भमणि की कान्ति से सुशोभित मनोहर ग्रीवा है। उसका श्यामल वक्षःस्थल श्रीवत्सचिह्न के रूप में लक्ष्मीजी का नित्य निवास होने के कारण कसौटी की शोभा को भी मात करता है।

पूररेचकसं(वँ)विग्न-वलिवल्गुदलोदरम्।

प्रतिसं(ङ्)क्रामयद्विश्वं(न्), नाभ्याऽऽवर्तगभीरया॥ 50॥

पूर + रेचक + संविग्न, वलिवल् + गुद + लोदरम्

प्रतिसं(ङ्)क्रा + मयद् + विश्वन्, नाभ्याऽऽ + वर्त + गभीरया

उसका त्रिवली से सुशोभित, पीपल के पत्ते के समान सुडौल उदर श्वास के आने-जाने से हिलता हुआ बड़ा ही मनोहर जान पड़ता है। उसमें जो भँवर के समान चक्करदार नाभि है, वह इतनी गहरी है कि उससे उत्पन्न हुआ यह विश्व मानो फिर उसी में लीन होना चाहता है।

श्यामश्रोण्यधिरोचिष्णुर्-दुकूलस्वर्णमेखलम्।

समचार्वङ्घ्रिजङ्घोरु-निम्नजानुसुदर्शनम्॥ 51॥

श्याम + श्रोण्य + धिरो + चिष्णुर्, दुकूल + स्वर्ण + मेखलम्

सम + चार्वङ् + घ्रिजङ् + घोरु, निम्न + जानु + सुदर्शनम्

श्यामवर्ण कटिभाग में पीताम्बर और सुवर्ण की मेखला शोभायमान है। समान और सुन्दर चरण, ङ्गपडली, जाँघ और घुटनों के कारण आपका दिव्य विग्रह बड़ा ही सुघड़ जान पड़ता है।

पदा शरत्पद्मपलाशरोचिषा,

नखद्युभिर्नोऽन्तरघं(वँ) विधुन्वता।

प्रदर्शयं स्वीयमपास्तसाध्वसं(म्),

पदं(ङ्) गुरो मार्गगुरुस्तमोजुषाम्॥ 52॥

शरत् + पद्म + पलाश + रोचिषा, नख + द्यभिर् + नोऽन्तरघं(म्)

स्वी + यम + पास्त + साध्वसं(म्), मार्ग + गुरुस् + तमो + जुषाम्

आपके चरण कमलों की शोभा शरद् ऋतु के कमल-दल की कान्ति का भी तिरस्कार करती है। उनके नखों से जो प्रकाश निकलता है, वह जीवों के हृदयान्धकार को तत्काल नष्ट कर देता है। हमें आप कृपा करके भक्तों के भयहारी एवं आश्रय स्वरूप उसी रूप का दर्शन कराइये। जगद्गुरो ! हम अज्ञानावृत प्राणियों को अपनी प्राप्ति का मार्ग बतला ने वाले आप ही हमारे गुरु हैं।

एतद्रूपमनुध्येय-मात्मशुद्धिमभीप्सताम्।

यद्भक्तियोगोऽभयदः(स्), स्वधर्ममनुतिष्ठताम्॥ 53॥

एतद् + रूपमनु + ध्येय, मात्म + शुद्धि + मभीप् + सताम्

यद् + भक्तियोगोऽ + भयदः(स्), स्वधर्म + मनु + तिष्ठताम्

प्रभो ! चित्त शुद्धि की अभिलाषा रखने वाले पुरुष को आपके इस रूप का निरन्तर ध्यान करना चाहिये; इसकी भक्ति ही स्वधर्म का पालन करने वाले पुरुष को अभय करने वाली है।

भवान् भक्तिमता लभ्यो, दुर्लभः(स्) सर्वदेहिनाम्।

स्वाराज्यस्याप्यभिमत, एकान्तेनात्मविद्गतिः॥ 54॥

स्वा + राज्यस् + याप्य + भिमत, एकान्ते + नात्म + विद्गतिः

स्वर्ग का शासन करने वाला इन्द्र भी आपको ही पाना चाहता है तथा विशुद्ध आत्म ज्ञानियों की गति भी आप ही हैं। इस प्रकार आप सभी देहधारियों के लिये अत्यन्त दुर्लभ हैं; केवल भक्तिमान् पुरुष ही आपको पा सकते हैं।

तं(न्) दुराराध्यमाराध्य, सतामपि दुरापया।

एकान्तभक्त्या को वाञ्छेत्-पादमूलं(वँ) विना बहिः॥ 55॥

दुरा + राध्य + माराध्य

सत्पुरुषों के लिये भी दुर्लभ अनन्य भक्ति से भगवान् को प्रसन्न करके, जिनकी प्रसन्नता किसी अन्य साधना से दुःसाध्य है, ऐसा कौन होगा जो उनके चरणतल के अतिरिक्त और कुछ चाहेगा।

यत्र निर्विष्टमरणं(ङ्), कृतान्तो नाभिमन्यते।

विश्वं(वँ) विध्वं(म्)सयन् वीर्य-शौर्यविस्फूर्जितभ्रुवा॥ 56॥

निर् + विष्ट + मरणं(ङ्), शौर्य + विस्फूर् + जित + भ्रुवा

जो काल अपने अदम्य उत्साह और पराक्रम से फडक़ती हुए भौंह के इशारे से सारे संसार का संहार कर डालता है, वह भी आपके चरणों की शरण में गये हुए प्राणी पर अपना अधिकार नहीं मानता।

क्षणार्धेनापि तुलये, न स्वर्गं(न्) नापुनर्भवम्।

भगवत्सं(ङ्)गिसं(ङ्)गस्य, मर्त्यानां(ङ्) किमुताशिषः॥ 57॥

क्षणार् + धेनापि, भगवत् + सं(ङ्)गि + सं(ङ्)गस्य ,किमुता + शिषः

ऐसे भगवान के प्रेमी भक्तों का यदि आधे क्षण के लिये भी समागम हो जाय तो उसके सामने मैं स्वर्ग और मोक्ष को कुछ नहीं समझता; फिर मर्त्यलोक के तुच्छ भोगों की तो बात ही क्या है।

अथानघाङ्घ्रेस्तव कीर्तितीर्थयो-

रन्तर्बहिः(स्)स्नानविधूतपाप्मनाम्।

भूतेष्वनुक्रोशसुसत्त्वशीलिनां(म्),

स्यात्सं(ङ्)गमोऽनुग्रह एष नस्तव॥ 58॥

अथान + घाङ् + घ्रेस् + तव, रन्तर् + बहिः(स्) + स्नान + विधूत + पाप्मनाम्

भूतेष्व + नुक्रो + शसुसत्त्व + शीलिनां(म्), स्यात् + सं(ङ्)ग + मोऽनुग्रह

प्रभो ! आपके चरण सम्पूर्ण पाप राशि को हर लेने वाले हैं। हम तो केवल यही चाहते हैं कि जिन लोगों ने आपकी कीर्ति और तीर्थ में आन्तरिक और बाह्य स्नान करके मानसिक और शारीरिक दोनों प्रकार के पापों को धो डाला है तथा जो जीवों के प्रति दया, राग-द्वेषरहित चित्त तथा सरलता आदि गुणों से युक्त हैं, उन आपके भक्तजनों का सङ्ग हमें सदा प्राप्त होता रहे। यही हम पर आपकी बड़ी कृपा होगी।

न यस्य चित्तं(म्) बहिरर्थविभ्रमं(न्),

तमोगुहायां(ञ्) च विशुद्धमाविशत्।

यद्भक्तियोगानुगृहीतमं(ञ्)जसा,

मुनिर्विचष्टे ननु तत्र ते गतिम्॥ 59॥

बहि + रर्थ + विभ्रमं(न्) ,यद् + भक्तियोगा + नुगृहीत + मं(ञ्)जसा, मुनिर् + विचष्टे

जिस साधक का चित्त भक्ति योग से अनुगृहीत एवं विशुद्ध होकर न तो बाह्य विषयों में भटकता है और न अज्ञान-गुहारूप प्रकृति में ही लीन होता है, वह अनायास ही आपके स्वरूप का दर्शन पा जाता है।

यत्रेदं(वँ) व्यज्यते विश्वं(वँ), विश्वस्मिन्नवभाति यत्।

तत् त्वं(म्) ब्रह्म परं(ञ्) ज्योति- राकाशमिव विस्तृतम्॥ 60॥

विश्वस् + मिन् + नवभाति

जिसमें यह सारा जगत् दिखायी देता है और जो स्वयं सम्पूर्ण जगत में भास रहा है, वह आकाश के समान विस्तृत और परम प्रकाशमय ब्रह्मतत्त्व आप ही हैं।

यो माययेदं(म्) पुरुरूपयासृजद्

बिभर्ति भूयः क्षपयत्यविक्रियः।

यद्भेदबुद्धिः(स्) सदिवात्मदुः(स्)स्थया

तमात्मतन्त्रं(म्) भगवन् प्रतीमहि॥ 61॥

पुरु + रूपया + सृजद्, क्षप + यत्य + विक्रियः

सदि + वात्म + दुः(स्)स्थया, तमात्म + तन्त्रं(म्)

भगवन् ! आपकी माया अनेक प्रकार के रूप धारण करती है। इसी के द्वारा आप इस प्रकार जगत की रचना, पालन और संहार करते हैं जैसे यह कोई सद्वस्तु हो। किन्तु इससे आप में किसी प्रकार का विकार नहीं आता। माया के कारण दूसरे लोगों में ही भेद बुद्धि उत्पन्न होती है, आप परमात्मा पर वह अपना प्रभाव डालने में असमर्थ होती है। आपको तो हम परम स्वतन्त्र ही समझते हैं।

क्रियाकलापैरिदमेव योगिनः(श्)

श्रद्धान्विताः(स्) साधु यजन्ति सिद्धये।

भूतेन्द्रियान्तः(ख्)करणोपलक्षितं(वँ)

वेदे च तन्त्रे च त एव कोविदाः॥ 62॥

क्रिया + कलापै + रिदमेव, भूतेन्द्रि + यान्तः(ख्) + करणो + पलक्षितं(वँ)

आपका स्वरूप पञ्चभूत, इन्द्रिय और अन्त:करण के प्रेरक रूप से उपलक्षित होता है। जो कर्म योगी पुरुष सिद्धि प्राप्त करने के लिये तरह-तरह के कर्मों द्वारा आपके इस सगुण साकार स्वरूप का श्रद्धा पूर्वक भली भाँति पूजन करते हैं, वे ही वेद और शास्त्रों के सच्चे मर्मज्ञ हैं।

त्वमेक आद्यः(फ्) पुरुषः(स्) सुप्तशक्तिस् -

तया रजः(स्)सत्त्वतमो विभिद्यते।

महानहं(ङ्) खं(म्) मरुदग्निवार्धराः(स्)

सुरर्षयो भूतगणा इदं(यँ) यतः॥ 63॥

मरु+ दग्नि+ वार्धराः(स्)

प्रभो ! आप ही अद्वितीय आदि पुरुष हैं। सृष्टि के पूर्व आपकी माया शक्ति सोयी रहती है। फिर उसी के द्वारा सत्त्व, रज और तम रूप गुणों का भेद होता है और इसके बाद उन्हीं गुणों से महत्तत्त्व, अहंकार, आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी, देवता, ऋषि और समस्त प्राणियों से युक्त इस जगत की उत्पत्ति होती है।

सृष्टं(म्) स्वशक्त्येदमनुप्रविष्टश्-

चतुर्विधं(म्) पुरमात्मां(म्)शकेन।

अथो विदुस्तं(म्) पुरुषं(म्) सन्तमन्तर्-

भुङ्क्ते हृषीकैर्मधु सारघं(यँ) यः॥ 64॥

स्व + शक्त्ये + दम + नुप्रविष्टश् ,पुर + मात्मां(म्) + शकेन , हृषी + कैर् + मधु

फिर आप अपनी ही माया शक्ति से रचे हुए इन जरायुज, अण्डज, स्वेदज और उद्भिज्ज भेद से चार प्रकार के शरीरों में अंशरूप से प्रवेश कर जाते हैं और जिस प्रकार मधु मक्खियाँ अपने ही उत्पन्न किये हुए मधु का आस्वादन करती हैं, उसी प्रकार वह आपका अंश उन शरीरों में रहकर इन्द्रियों के द्वारा इन तुच्छ विषयों को भोगता है। आपके उस अंश को ही पुरुष या जीव कहते हैं।

स एष लोकानतिचण्डवेगो

विकर्षसि त्वं(ङ्) खलु कालयानः।

भूतानि भूतैरनुमेयतत्त्वो

घनावलीर्वायुरिवाविषह्यः॥ 65॥

लोका + नति + चण्ड + वेगो ,भूतै + रनुमेय + तत्त्वो ,घना + वलीर् + वायुरिवा + विषह्यः

प्रभो ! आपका तत्त्वज्ञान प्रत्यक्ष से नहीं अनुमान से होता है। प्रलयकाल उपस्थित होने पर काल स्वरूप आप ही अपने प्रचण्ड एवं असह्य वेग से पृथ्वी आदि भूतों को अन्य भूतों से विचलित कराकर समस्त लोकों का संहार कर देते हैं—जैसे वायु अपने असहनीय एवं प्रचण्ड झोंकों से मेघों के द्वारा ही मेघों को तितर-बितर करके नष्ट कर डालती है।

प्रमत्तमुच्चैरितिकृत्यचिन्तया

प्रवृद्धलोभं(वँ) विषयेषु लालसम्।

त्वमप्रमत्तः(स्) सहसाभिपद्यसे

क्षुल्लेलिहानोऽहिरिवाखुमन्तकः॥ 66॥

प्रमत्त + मुच्चै + रिति + कृत्य + चिन्तया , क्षुल्ले + लिहानोऽ + हिरिवाखु + मन्तकः

भगवन् ! यह मोहग्रस्त जीव प्रमादवश हर समय इसी चिन्ता में रहता है कि 'अमुक कार्य करना है'। इसका लोभ बढ़ गया है और इसे विषयों की ही लालसा बनी रहती है। किन्तु आप सदा ही सजग रहते हैं; भूख से जीभ लप लपाता हुआ सर्प जैसे चूहे को चट कर जाता है, उसी प्रकार आप अपने काल स्वरूप से उसे सहसा लील जाते हैं।

कस्त्वत्पदाब्जं(वँ) विजहाति पण्डितो

यस्तेऽवमानव्ययमानकेतनः।

विशङ्क्यास्मद्गुरुरर्चति स्म यद्

विनोपपत्तिं(म्) मनवश्चतुर्दश॥ 67॥

कस् + त्वत् + पदाब्जं(म्) ,यस्तेऽ + वमान + व्ययमान + केतनः

विशङ्क्या + स्मद् + गुरुरर् + चति, विनोप + पत्तिं(म्), मनवश् + चतुर्दश

आपकी अवहेलना करने के कारण अपनी आयु को व्यर्थ मानने वाला ऐसा कौन विद्वान् होगा, जो आपके चरण कमलों को बिसारेगा ? इनकी पूजा तो काल की आशङ्का से ही हमारे पिता ब्रह्माजी और स्वायम्भुव आदि चौदह मनुओं ने भी बिना कोई विचार किये केवल श्रद्धा से ही की थी।

अथ त्वमसि नो ब्रह्मन्, परमात्मन् विपश्चिताम्।

विश्वं(म्) रुद्रभयध्वस्त-मकुतश्चिद्भया गतिः॥ 68॥

विपश् + चिताम्, रुद्र + भय + ध्वस्त, मकुतश् + चिद् + भया

ब्रह्मन् ! इस प्रकार सारा जगत् रुद्ररूप काल के भय से व्याकुल है। अतः परमात्मन् ! इस तत्त्व को जानने वाले हम लोगों के तो इस समय आप ही सर्वथा भयशून्य आश्रय हैं।

इदं(ञ्) जपत भद्रं(वँ) वो, विशुद्धा नृपनन्दनाः।

स्वधर्ममनुतिष्ठन्तो, भगवत्यर्पिताशयाः॥ 69॥

स्वधर्म + मनु + तिष्ठन्तो ,भगवत् + यर् + पिताशयाः

राजकुमारो ! तुम लोग विशुद्ध भाव से स्वधर्म का आचरण करते हुए भगवान् में चित्त लगाकर मेरे कहे हुए इस स्तोत्र का जप करते रहो; भगवान् तुम्हारा मङ्गल करेंगे।

तमेवात्मानमात्मस्थं(म्), सर्वभूतेष्ववस्थितम्।

पूजयध्वं(ङ्) गृणन्तश्च, ध्यायन्तश्चासकृद्धरिम्॥ 70॥

तमे + वात्मा + नमात् + मस्थं(म्), सर्व + भूतेष्व + वस्थितम्, ध्यायन्तश् + चासकृद् + धरिम्

तुम लोग अपने अन्तःकरण में स्थित उन सर्वभूतान्तर्यामी परमात्मा श्रीहरि का ही बार-बार स्तवन और चिन्तन करते हुए पूजन करो।

योगादेशमुपासाद्य, धारयन्तो मुनिव्रताः।

समाहितधियः(स्) सर्व, एतदभ्यसतादृताः॥ 71॥

योगा + देश + मुपा + साद्य, समा + हित + धियः(स्) ,एत + दभ्य + सता + दृताः

मैंने तुम्हें यह योगा देश नाम का स्तोत्र सुनाया है। तुम लोग इसे मन से धारण कर मुनिव्रत का आचरण करते हुए इसका एकाग्रता से आदर पूर्वक अभ्यास करो।

इदमाह पुरास्माकं(म्), भगवान् विश्वसृक्पतिः।

भृग्वादीनामात्मजानां(म्), सिसृक्षुः(स्) सं(म्)सिसृक्षताम्॥ 72॥

भगवान् + विश्व + सृक्पतिः, भृग्वादी + ना + मात्म + जानां(म्), सं(म्)सि + सृ + क्षताम्

यह स्तोत्र पूर्व काल में जगद्विस्तार के इच्छुक प्रजापतियों के पति भगवान् ब्रह्माजी ने प्रजा उत्पन्न करने की इच्छा वाले हम भृगु आदि अपने पुत्रों को सुनाया था।

ते वयं(न्) नोदिताः(स्) सर्वे, प्रजासर्गे प्रजेश्वराः।

अनेन ध्वस्ततमसः(स्), सिसृक्ष्मो विविधाः(फ्) प्रजाः॥ 73॥

ध्वस्त + तमसः(स्)

जब हम प्रजापतियों को प्रजा का विस्तार करने की आज्ञा हुई, तब इसी के द्वारा हमने अपना अज्ञान निवृत्त करके अनेक प्रकार की प्रजा उत्पन्न की थी।

अथेदं(न्) नित्यदा युक्तो, जपन्नवहितः(फ्) पुमान्।

अचिराच्छ्रेय आप्नोति, वासुदेवपरायणः॥ 74॥

जपन्न + वहितः(फ्), अचिरा + च्छ्रेय, वासुदेव + परायणः

अब भी जो भगवत्परायण पुरुष इसका एकाग्र चित्त से नित्यप्रति जप करेगा, उसका शीघ्र ही कल्याण हो जायगा।

श्रेयसामिह सर्वेषां(ञ्), ज्ञानं(न्) निः(श्)श्रेयसं(म्) परम्।

सुखं(न्) तरति दुष्पारं(ञ्), ज्ञाननौर्व्यसनार्णवम्॥ 75॥

श्रेयसा + मिह, ज्ञान + नौर् + व्यस + नार्णवम्

इस लोक में सब प्रकार के कल्याण साधनों में मोक्षदायक ज्ञान ही सब से श्रेष्ठ है। ज्ञान-नौका पर चढ़ा हुआ पुरुष अनायास ही इस दुस्तर संसार- सागर को पार कर लेता है।

य इमं(म्) श्रद्धया युक्तो, मद्गीतं(म्) भगवत्स्तवम्।

अधीयानो दुराराध्यं(म्), हरिमाराधयत्यसौ॥ 76॥

भगवत् + स्तवम्, दुरा + राध्यं(म्), हरि + मारा + धयत् + यसौ

यद्यपि भगवान् की आराधना बहुत कठिन है- किन्तु मेरे कहे हुए इस स्तोत्र का जो श्रद्धा पूर्वक पाठ करेगा, वह सुगमता से ही उनकी प्रसन्नता प्राप्त कर लेगा।

विन्दते पुरुषोऽमुष्मा-द्यद्यदिच्छत्यसत्वरम्।

मद्गीतगीतात्सुप्रीताच्-छ्रेयसामेकवल्लभात्॥ 77॥

पुरुषोऽ + मुष्माद्, यद्यदिच् + छत्य + सत्वरम्

मद्गीत + गीतात् + सुप्रीताच् , छ्रेय + सामेक + वल्लभात्

भगवान् ही सम्पूर्ण कल्याण साधनों के एकमात्र प्यारे—प्राप्तव्य हैं। अतः मेरे गाये हुए इस स्तोत्र के गान से उन्हें प्रसन्न करके वह स्थिरचित्त होकर उनसे जो कुछ चाहेगा, प्राप्त कर लेगा।

इदं(यँ) यः(ख्) कल्य उत्थाय, प्राञ्जलिः(श्) श्रद्धयान्वितः।

शृणुयाच्छ्रावयेन्मर्त्यो, मुच्यते कर्मबन्धनैः॥ 78॥

शृणु + याच् + छ्राव + येन् + मर्त्यो

जो पुरुष उषःकाल में उठकर इसे श्रद्धा पूर्वक हाथ जोडक़र सुनता या सुनाता है, वह सब प्रकार के कर्म बन्धनों से मुक्त हो जाता है।

गीतं(म्) मयेदं(न्) नरदेवनन्दनाः(फ्)

परस्य पुं(म्)सः(फ्) परमात्मनः(स्) स्तवम्।

जपन्त एकाग्रधियस्तपो महच्-

चरध्वमन्ते तत आप्स्यथेप्सितम्॥ 79॥

नरदेव + नन्दनाः ,एका + ग्रधियस् + तपो, महच् + चर + ध्वमन्ते , आप्स्य + थेप् + सितम्

राजकुमारो ! मैंने तुम्हें जो यह परम पुरुष परमात्मा का स्तोत्र सुनाया है, इसे एकाग्रचित्त से जपते हुए तुम महान् तपस्या करो।तपस्या पूर्ण होने पर इसी से तुम्हें अभीष्ट फल प्राप्त हो जायगा।

॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहं(म्)स्यां(म्) सं(म्)हितायां(ञ्) चतुर्थस्कन्धे रुद्रगीतं(न्) नाम चतुर्विं(म्)शोऽध्यायः॥

ॐ पूर्णमदः(फ्) पूर्णमिदं(म्)पूर्णात्पूर्णमुदच्यते
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते।।
ॐ शान्तिः(श्)शान्तिः(श्)शान्तिः।।